॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज की स्थापना तिथि

: लेखक :

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

आर्यसमाज की स्थापना

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्यसमाज' नाम के एक संगठन के निर्माण का विचार पहले-पहल अहमदाबाद में प्रकट किया था। इस सम्बध में 'हितेच्छु' के ७ जनवरी १८७५ के अंक में प्रकाशित निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—"स्वामी दयानन्द ने दिसम्बर १८७४ में अपने अपने अहमदाबाद में प्रवास के दिनों में कहा था—'जिन बुराइयों से हमारा वर्त्तमान हिन्दू समाज हानि उठा रहा है उन्हें दूर करने हेतु आर्यसमाज और वैदिक पाठशाला का होना आवश्यक है।' परन्तु अहमदाबाद के लोग अभी तक अपने जातिगत पूर्व-संस्कारों को तिलाञ्जलि देने को तैयार नहीं है।"

स्वामी जी ३१ दिसम्बर १८७४ को अहमदाबाद से राजकोट पहुँचे। वहाँ उनका धूमधाम से स्वागत हुआ और उनके अनेक व्याख्यान हुए। आर्यसमाज की स्थापना के अपने जिस विचार को स्वामी जी अहमदाबाद में क्रियान्वित नहीं कर सके थे, वह राजकोट में क्रियान्वित हुआ। दो वर्ष पूर्व वहाँ 'प्रार्थना समाज' स्थापित हो चुका था। स्वामी जी ने प्रस्ताव किया कि राजकोट में आर्यसमाज स्थापित किया जाए। प्रार्थना-समाज के सभी सदस्य सामूहिक रूप से आर्यसमाज के सदस्य बनने को तैयार हो गए और इस प्रकार प्रथम आर्यसमाज की स्थापना हो गई और उसके अधिवेशन नियमपूर्वक होने लगे। पर यह समाज देर तक न चल सका और छह मास पूरे होने से पहले ही इसका अन्त हो गया। उन दिनों ब्रिटिश सरकार द्वारा बड़ौदा-नरेश महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ को सिंहासनच्युत किए जाने के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन चल रहा था। राजकोट आर्यसमाज इससे अछूता न रह सका। समाज के अनेक सदस्य सरकारी सर्विस में थे। वे सरकार के दमनचक्र से इतने भयभीत हो गए कि उन्होंने समाज से अपना सम्बध विच्छेद कर लिया और इस प्रकार राजकोट में स्थापित यह प्रथम आर्यसमाज विघटित हो गया।

राजकोट से बम्बई लौटते समय स्वामी जी पुनः अहमदाबाद आए और एक बार फिर वहाँ समाज स्थापित करने का विचार किया, पर समाज की स्थापना के सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाया जा सका। तथापि इस निमित्त प्रयत्न चालू रहा और यह प्रयत्न बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के कुछ ही समय बाद फलीभूत हुआ।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना

स्वामीजी २९ जनवरी १८७५ को बम्बई पहुँचे। वहाँ पर आर्यसमाज की स्थापना

का विवरण प्रस्तुत करते हुए 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' में पृष्ठ ८ पर लिखा है—"एक दिन इन (स्वामी दयानन्द) के निवास स्थान पर इनके प्रति संमान रखनेवाले बम्बई के संभ्रान्त गृहस्थों ने जाकर धार्मिक चर्चा करते-करते बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की स्वामीजी से प्रार्थना की। इस पर उन्होंने सबको उद्देश करके स्पष्ट बता दिया कि —

'भाई, हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं। मैं तो वेद के अधीन हूँ। और हमारे भारत में पच्चीस कोटि आर्य हैं। कई-कई (किसी-किसी) बात में कुच्छ-कुच्छ भेद है, सो विचार करने से आप ही छूट जायगा। मैं संयासी हूँ और मेरा कर्त्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हूँ इसके बदले जो सत्य समझता हूँ, उसका निर्भयता से उपदेश करता हूँ। मैं कुछ कीर्त्ति का रागी नहीं हूँ। चाहे कोई मेरी स्तुति करे, वा निन्दा करे, मैं कर्त्तव्य समझके धर्मबोध कराता हूँ, कोई चाहे माने वा न माने इसमें मेरी कोई हानि-लाभ नहीं है।' एक भाई ने कहा कि 'हम जो समाज स्थापित करें तो इसमें कोई सार्वजनिक नुकसान है?' इसका जवाब स्वामीजी ने दिया कि —

'आप यदि समाज से पुरुषार्थ करके परोपकार कर सकते हो तो समाज कर लो। इसमें मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गड़बड़ाध्याय हो जायगा। मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हूँ वैसा ही आपको भी करूँगा। और इतना लक्ष में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं है। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ। इससे यदि कोई मेरी भी ग़लती आगे पाई जाय, युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसको भी सुधार लेना। यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जायगा। और इसी प्रकार से 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़के नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है। इसमें यह भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो यह है कि इस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित हैं वे सब भी वेदों को मानते हैं, इससे वेदशास्त्ररूपी समुद्र यह सब नदी-नाव पुनः मिला देने से धर्म-ऐक्यता होगी। और धर्म-ऐक्यता से सांसारिक और व्यावहारिक सुधारणा होगी और इससे कला-कौशलादि सब अभीष्ट सुधारा होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपने धर्मबल से अर्थ काम और मोक्ष मिल सकता है।"—

—*ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन* (द्वितीय भाग) पृष्ठ ८

कुछ दिन के पश्चात् बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' के १० अप्रैल १८७५ ईसवी शनिवार के प्रभात संस्करण के पृष्ठ ३, कालम ३ पर निम्नलिखित सूचना छपी—

'A meeting will be held at 5-30 P.M. today in the Girgam Back Road, at the bungalow belonging to Dr. Maneek Ji Aderjee, when Pandit Dayanand Saraswati will perform the ceremonies for the

formation of Arya Samaj. All well-wishers of the cause are invited to attend.'

अर्थात् : 'आज सायंकाल साढ़े पाँच बजे गिरगाँव मुहल्ले में स्थित डॉ० मानकजी अदेरजी के बँगले पर एक सभा होगी, जिसमें पण्डित दयानन्द सरस्वती आर्यसमाज की स्थापना की विधि संपन्न करेंगे। इसके हितेच्छु इसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित हैं।'

यदि ४ दिन पहले अर्थात् चैत्र शुक्ला १ (७ अप्रैल) को आर्यसमाज की स्थापना हो गई होती तो शनिवार १० अप्रैल को होनेवाले आयोजन की सूचना उस दिन (१० अप्रैल) के समाचारपत्रों में क्यों दी जाती ?

यही सूचना उस दिन के 'बॉम्बे गज़ट', 'जामए जमशेद' आदि में भी प्रसारित हुई। इस सूचना के अनुसार १० अप्रैल १८७५ (चैत्र शुक्ला पंचमी, शनिवार संवत् १९३१) को सायं साढ़े पाँच बजे गिरगाँव मुहल्ले में प्रार्थना समाज के निकट एक पारसी सज्जन डॉ० माणेकजी अदेरजी की वाटिका में श्री गिरधरलाल दयालदास कोठारी की अध्यक्षता में आर्यसमाज की स्थापना हुई। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित और सन् १९५७ में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित 'आर्यसमाज का इतिहास' के अनुसार महर्षि की उपस्थिति में यज्ञ हुआ, आर्यसमाज के नियम स्वीकृत हुए। उसके साप्ताहिक सत्संग होने लगे। आगामी १७ तथा २४ अप्रैल के अधिवेशनों में स्वयं स्वामीजी के उपदेश हुए।

उस दिन आर्यसमाज के सदस्यों की संख्या ९६ में थी। उन सबके नाम (जाति, व्यवसाय तथा शिक्षा के उल्लेख सहित) कालान्तर में आर्यसमाज बम्बई ने ही प्रकाशित किऐ थे। इस सदस्य-सूची में ३१वें स्थान पर पंडित दयानन्द सरस्वती का नाम अंकित है। उनकी जाति 'ब्राह्मण', व्यवसाय के स्थान पर 'संन्यासी' तथा शिक्षा के आगे 'संस्कृत और वैदिक संस्कृत' लिखा है। प्रथम आर्यसमाज के संस्थापक होने पर भी उन्होंने गुरु, आचार्य अथवा मत-प्रवर्त्तक के रूप में प्रतिष्ठित होना स्वीकार नहीं किया, वर्णानुक्रम में ३१वें स्थान पर साधारण सदस्य ही बने रहे।

अगले ही दिन, अर्थात् संवत् १९३१ (गुजराती) मिति चैत्र शुक्ला ६, रविवार (११ अप्रैल १८७५) को महर्षि ने श्री गोपालराव हरि देशमुख को अहमदाबाद के पते पर भेजे अपने पत्र में लिखा—"आगे बम्बई में चैत्र शुक्ल पंचमी शनिवार के दिन संध्या के साढ़े पाँच बजे आर्यसमाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ। ईश्वरानुग्रह से बहुत अच्छा हुआ। आप लोग भी वहाँ (अहमदाबाद में) आरम्भ कर दीजिए। विलम्ब मत कीजिए।"

सन् १९५२ के अक्तूबर मास के अन्त में श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक बम्बई गए, वहाँ आर्यसमाज के पुराने रिकॉर्ड में उन्हें बहुत ही नन्ही-सी, किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक देखने को मिली। इस पुस्तिका में आर्यसमाज बम्बई के प्रथम वर्ष के ११ मास का संक्षिप्त विवरण गुजराती में छपा है। यह लघु पुस्तिका २० × ३० बत्तीस पेजी, आकार के ३२ पृष्ठों में छपी है (ऊपर हरे रंग का टाइटल पेज इससे अतिरिक्त है)।

बाहर के टाइटल पेज के पश्चात् इस कार्य के प्रथम पृष्ठ पर अन्दरूनी टाइटल छपा है। द्वितीय पृष्ठ ख़ाली है। तृतीय पृष्ठ पर स्थूल अक्षरों में 'श्री आर्यसमाज स्थापना संवत् १९३१ ना (गुजराती पंचांग के अनुसार) चैत्र शुक्ल ५ शनीवार' स्पष्ट रूप से छपा है (शुद अर्थात् शुक्ल)। इस प्रसंग में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गुजराती पंचांग का संवत् १९३१ और विक्रमी संवत् का १९३२ एक ही वर्ष को सूचित करते हैं।

बम्बई आर्यसमाज के प्रारम्भिक ग्यारह महीनों का यह संक्षिप्त कार्य-विवरण उस समाज की स्थापना-तिथि के सम्बन्ध में सबसे पुराना मुद्रित उपलब्ध रिकॉर्ड है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह स्वयं उसी आर्यसमाज द्वारा प्रकाशित है। इसमें आर्यसमाज की स्थापना-तिथि से अतिरिक्त संस्थापक महर्षि दयानन्द सहित सब सदस्यों के नाम और उस समय स्वीकृत नियम भी दिये हैं। इसलिए उसकी सत्यता व प्रामाणिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस छोटी-सी पुस्तिका की एक प्रति अजमेर में परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में भी सुरक्षित है। उन्हीं-दो पृष्ठों को फोटो-स्टेट कराके हमने मँगाया। उसके ब्लाक से मुद्रित कराए वे दो पृष्ठ यहाँ प्रमाणरूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

THE

RULES OF THE ARYASAMAJ.

श्री आर्यसमाजना

नियमो.

A. S. B.

मुंबई,

युनियन प्रेसमा म्हा. रू. राणीनाथे छाप्याछे.

संवत १९३२ ना माहा वद ०)) सन १८७६.

मुल अर्ध आनो.

श्री—

आर्यसमाज.

स्थापना. संवत् १९३१ ना चैत्र सुद ५ ने शनीवार.

खंड १ लो.

उद्देश.

१. आ समाजनो मुख्य उद्देश एछे के वेदविहित धर्मतत्वो प्रत्येक समासदे मान्य करवां अने तेनो प्रचार देशप्रदेश करवाने यथा शक्ति प्रयत्न करवो.

२. समाजना आ गंभीर महान हेतुनी [illegible] [illegible] तथा विस्तार [illegible], समाजनी

इस सम्बन्ध में श्री चिम्मनलाल वैश्य द्वारा लिखित 'सरस्वतीन्द्र जीवन चरित' की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं—"तत्पश्चात् धर्मजिज्ञासुओं के मन में अत्यन्त उत्कण्ठा समाज स्थिर करने की उत्पन्न हुई और दृढ़ विचार कर समाज के नियम बना कई दिन तक वादानुवाद के पश्चात् चैत्र सुदी ५, संवत् १९३२ विक्रमी तदनुसार १० अप्रैल १९७५ को सायंकाल के समय गिरगाँव में डॉक्टर मानकजी के बाग़ में श्री गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी० ए० एल० एल० बी० की प्रधानता में एक पब्लिक अधिवेशन में आर्यसमाज स्थापन हो गया।" श्री वैश्य द्वारा लिखा गया ऋषि का यह सबसे पुराना जीवन-चरित माना जाता है।

जिस मुख्य आधार पर और जिन प्रबल युक्ति-प्रमाणों से संवत् १९३१ (१९३२ वि०) मिति चैत्र शुक्ल पंचमी शनिवार (१० अप्रैल १८७५) को आर्यसमाज की स्थापना-तिथि प्रतिपादित किया जाता है, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१. बम्बई के समाचारपत्रों में आर्यसमाज की स्थापना-सम्बन्धी विज्ञप्ति प्रकाशित करके हितेच्छु लोगों को १० अप्रैल को सायंकाल साढ़े पाँच बजे डॉ० मानक जी अदेरजी के बँगले पर इस निमित्त आमन्त्रित किया गया।

२. अगले ही दिन अर्थात् संवत् १९३२ मिति चैत्र शुक्ला ६ रविवार (११ अप्रैल १९७५) को महर्षि ने गोपालराव हरि देशमुख को एक पत्र लिखा जिसमें आर्यसमाज की स्थापना-तिथि का स्पष्ट रूप से इन शब्दों में उल्लेख किया गया है—"आगे बम्बई में चैत्र शुद (शुक्ला) ५ शनिवार के दिन संध्या साढ़े पाँच बजे आर्यसमाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ।"

३. बम्बई आर्यसमाज के प्रारम्भिक ग्यारह महीनों का सक्षिप्त कार्य-विवरण सन् १८७६ में गुजराती भाषा में प्रकाशित किया गया था जिसके तृतीय पृष्ठ पर अच्छे मोटे अक्षरों में छपा है—'श्री आर्यसमाज, सम्वत् १९३१ ना चैत्र शुद ५ ने शनीवार।'

ये सब प्रमाण १० अप्रैल सन् १८७५ (चैत्र सुदी पंचमी शनिवार) को आर्यसमाज बम्बई का स्थापना-दिवस होने की पुष्टि करते हैं। विशेषतया, महर्षि के अगले ही दिन चैत्र सुदी ६ रविवार के दिन श्री गोपालराव हरि देशमुख को लिखे पत्र में बम्बई आर्यसमाज के आरम्भ की जो तिथि दी गई है, उसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है और वह चैत्र सुदी पंचमी (१० अप्रैल १८७५) है।

महर्षि के जीवन-चरित की घटनाओं को प्रामाणिक रूप से संकलित करने जैसा दुरूह कार्य पं० लेखराम जैसा सर्वात्मना समर्पित व्यक्ति ही कर सकता था। इस निमित्त उन्होंने घोर परिश्रम किया। और जब वह इस कार्य में तत्पर थे तब महर्षि के देहावसान को हुए अधिक समय नहीं हुआ था। उस समय उनके जीवन-संबन्धी घटनाएँ ताज़ा थीं। पं० लेखराम जी को बम्बई में जो सूचनाएँ मिलीं वे उन लोगों से प्राप्त हुई होंगी जो स्थापना के समय विद्यमान थे। तभी तो उन्होंने स्थापना का दिवस सर्वथा निश्चयपूर्वक लिखा है। पूरी खोज करने के पश्चात् पं० लेखराम जी ने लिखा है—

"चैत्र सुदी ५ शनिवार संवत् १९३२ विक्रमी तदनुसार १० अप्रैल सन् १८७५ व ३ रबीउल अव्वल सन् १२९२ हिजरी व संवत् १७९७ शलिवाहन व सन् १२८३ फ़सली व माहे खुरदाद सन् १२८४ फ़ारसी व चैत २९ संक्रान्ति संवत् १९३२ को शाम के समय मोहल्ला गिरगाँव में डॉक्टर मानकजी के बग़ीचे में, श्री गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी० ए० एल० एल० बी० की प्रधानता में एक सार्वजनिक सभा हुई। उसमें नियम सुनाए गए और सर्वसम्मति से प्रमाणित हुए और उसी दिन आर्यसमाज की स्थापना हो गई।"

पं० लेखराम जो ने जिस सुनिश्चित रूप में सब सम्वतों का सामंजस्य करके स्थापना-तिथि का उल्लेख किया है, उससे सूचित होता है कि वे इस तिथि की सत्यता के विषय में पूरी तरह आश्वस्त थे। पं० लेखराम जी के पश्चात् ऋषि के जीवन-चरित की खोज में लगभग पन्द्रह वर्ष तक 'नैरन्तर्यसत्कारासेवित' (योगसूत्र १-२४)—निरन्तर श्रद्धापूर्वक परिश्रम करनेवाले बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय थे। आर्यसमाजी न होते हुए ऋषि दयानन्द के प्रति देवेन्द्र बाबू की श्रद्धा एवं उदात्त भावना का परिचय देने के लिए हम उनके लिखे जीवन-चरित के आदि और अन्त के दो संदर्भों को यहाँ अविकल रूप में उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं। देवेन्द्र बाबू आरम्भ में कहते हैं—

"हमसे हमारे बन्धुवर्ग बार-बार यह प्रश्न करते हैं कि तुम यह क्या कर रहे हो? तुमने अपने जीवन का इतना समय केवल 'दयानन्द, दयानन्द' की रट लगाकर गँवाया है। जीवन के जिस अंश को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, तुमने उसे 'दयानन्द, दयानन्द' कहके ही बिताया है। हमने दयानन्द के जीवन की एक-एक घटना का पता लगाने में व्यय कर दिया है। एक घटना की सत्यता का निश्चय करने के लिए हम अनेक बार एक ही स्थान पर गए हैं। जिस समय भी यह सुना कि अमुक व्यक्ति के पास जाने से दयानन्द-चरित की घटना का ठीक-ठीक पता लग सकता है, हम उसी समय टिकट लेकर सैकड़ों मील की यात्रा करके उस स्थान पर पहुँचे हैं। इसी प्रकार हमने इस विशाल भारतवर्ष में बरसों पर्यटन किया। कभी-कभी हम अस्वास्थ्य या धनाभाव के कारण अस्थिर तक हो गए। परन्तु हमने अपने व्रत को नहीं तोड़ा। प्रश्न यह है कि इन कठिनाइयों ने हमें विचलित क्यों नहीं किया? कौन है यह दयानन्द? उसकी शिक्षा में ऐसी कौन-सी अलौकिक शक्ति है, उसके उपदेशों में ऐसा कौन-सा संजीवन मन्त्र छिपा है, जिसके कारण हम उसके जीवन-इतिहास के लिए क्लेश पर क्लेश सहते गए हैं? दयानन्द की शिक्षा व उदाहरण के साथ बंगवासियों का, बल्कि भारतवासियों का और इससे भी अधिक पृथिवी-भर के रहनेवालों का ऐसा कौन-सा कल्याण अनुस्यूत है जिसके कारण हमने अपने-आपको इस भीष्म प्रतिज्ञा में बाँधा है?" इन प्रश्नों का उत्तर देने के बाद अपनी इस यात्रा के अन्त में पहुँचने पर देवेन्द्र बाबू लिखते हैं—

"अब हमारा दयानन्द-परिक्रम का व्रत समाप्त हो गया। संन्यासी परमहंसों के गंगापरिक्रम के समान दयानन्द-परिक्रम का कार्य शेष हो गया। परमहंसगण गंगा की

उत्पत्ति-भूमि से आरम्भ करके गंगा के किनारे-किनारे विचरते हुए गंगासागर तक गमन करके अपने परिक्रम का कार्य समाप्त करते हैं। हमने भी दयानन्द के जन्मगृह से प्रारम्भ करके उनकी श्मशान-भूमि तक पर्यटन किया है। टंकारा से, जिसके जीवापुर मुहल्ले के जिस घर में उन्होंने जन्म लिया था, आरम्भ करके अजमेर के तारागढ़ के नीचे अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस निदारुण भूमि को देखकर आए हैं जहाँ भारत के सूर्य के दिव्यदेह को चितानल ने कुछ मुट्ठीभर भस्म में परिणत कर दिया था। जैसे गंगा-परिक्रमकारी जन गंगा के दैर्घ्य, गंगा के विस्तार, गंगा की विशालता, गंगा की भीषणता, गंगा के आवेग, गंगा के आवर्त्त, गंगा के क्षोभ, गंगा की तरंग, गंगा की कल्लोल और गंगा की हिल्लोल को देखते हैं, वैसे ही हमने भी दयानन्द-गंगा का सब-कुछ देखा है; इसके प्रत्येक तरंग-निक्षेप पर दृष्टि दी है। कोई-कोई संन्यासी कहते हैं कि हरिद्वार से आरम्भ करके गंगासागर तक पर्यटन करने में प्रायः तीन वर्ष लगते हैं, परन्तु हमने दयानन्द-गंगा के परिक्रम में प्रायः पन्द्रह वर्ष काटे हैं। अतः दयानन्द-गंगा हरिद्वार-वाहिनी गंगा की अपेक्षा कुछ दीर्घतर है, विशालतर है। संन्यासी परमहंसगण अपने विश्वास में गंगा-परिक्रमण वा नर्मदा-परिक्रमण से कुछ न कुछ पुण्यार्जन करते हैं। पाठक! तो क्या हमने दयानन्द-गंगा का परिक्रमण करके कुछ पुण्यार्जन नहीं किया है?"

आर्यसमाज की स्थापना के प्रसंग में देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है—

"सेठ मथुरादास लौजी, सेवकलाल, करसनदास, गिरधरलाल दयालदास कोठारी प्रभृति सज्जनों ने आर्यसमाज स्थापित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। इन सत्पुरुषों पर पौराणिकों ने अत्याचार भी किए और सर्वसाधारण ने इनकी भरपेट निन्दा भी की। परन्तु वे अपने सङ्कल्प पर दृढ़ रहे। राजमान् राजेश्वरी पानाचन्द आनन्दजी पारीख को आर्य-समाज के नियमों का ढाँचा बनाने के लिए नियत किया गया। उन्होंने वह तैयार किया और उसे स्वामीजी के सामने प्रस्तुत किया। स्वामीजी ने उसमें उचित संशोधन कर दिया। चैत्र शुक्ला ५ शनिवार संवत् १९३२ एवं १० अप्रैल १८७५ को गिरगाम रोड में प्रार्थना समाज के मन्दिर के निकट डॉक्टर माणकजी की बागबाड़ी में सायंकाल को ५ ॥ बजे एक सभा की गई जिसमें आर्यसमाज की स्थापना की गई और नियम स्वीकार किए गए।"

महर्षि के समकालीन तथा चिरकाल तक उनकी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के मन्त्री दीवान हरबिलास शारदा तथा स्वामी सत्यानन्दजी ने भी अपने ग्रन्थों में आर्यसमाज को चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन ही स्थापित हुआ माना है।

प्रसिद्ध विद्वान् एवं पत्रकार तथा वर्षों तक सार्वदेशिक सभा के मन्त्री तथा प्रधान रहे पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित और सार्वदेशिक सभा द्वारा ही सन् १९५७ में प्रकाशित आर्यसमाज का इतिहास में भी चैत्र सुदी पंचमी का ही अनुमोदन किया गया। स्वामी सत्यानन्द जी ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। सन् १९४० तक आर्यसमाज का स्थापना-दिवस मनाये जाने के लिए चैत्र सुदी पंचमी को ही प्रसारित करती रही है।

उसी दिन सब आर्यसमाजें आर्यसमाज स्थापना दिवस मनाती रहीं। प्रबुद्ध आर्यसमाजें अभी भी उसी का अनुसरण करती आ रही हैं।

कुछ लोगों के अनुसार बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना चैत्र सुदी पंचमी को न होकर चैत्र सुदी प्रतिपदा को हुई थी जिसका सबसे बड़ा प्रमाण वह शिलालेख है जो वहाँ आर्यसमाज के भवन पर लगा है और जिस पर आर्यसमाज का चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, तदनुसार ७ अप्रैल बुधवार को होना अंकित है।

ऐतिहासिक अन्वेषण में शिलालेखों का बड़ा महत्त्व माना जाता है। परन्तु इस शिलालेख को उन शिलालेखों के समान महत्त्व नहीं दिया जा सकता जिनके आधार पर पुराना इतिहास बनाया जाता है। यह निश्चित है कि जिस समय आर्यसमाज की स्थापना हुई थी उस समय का भवन विद्यमान नहीं था। ला० मुंशीराम (कालान्तर में महात्मा मुंशीराम स्वामी श्रद्धानन्द) संवत् १९४४ विक्रमी (सन् १८८७) की ग्रीष्म में बम्बई पहुंचे थे। अपनी आत्मकथा 'कल्याणमार्ग का पथिक' में स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा है—"आर्य समाज मन्दिर का इन दिनों केवल चबूतरा ही बना हुआ था जिस पर मैंने व्याख्यान दिया था।" इससे स्पष्ट है कि आर्यसमाज की स्थापना के १२ वर्ष बाद तक भी वहाँ आर्य-समाज का भवन नहीं बना था। जब भवन ही नहीं बना था तो उस पर शिलालेख लगने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसीके साथ एक दूसरा शिलालेख भी लगा है जिस पर लिखा है—

आर्यस्थान

> श्रीमत् पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी के सदोपदेश से सज्जन आर्यजनों ने वेदानुकूल व्याख्यान और पठन-पाठन आदि कार्य करने के लिए यह स्थान बनाके आर्यसमाज के अधिकार में रक्खा है।
>
> मिति फाल्गुन सुदी १ शनिवार १९३८, १८ फ़ेब्रुअरी १८८२

उक्त शिलालेख भवन-निर्माण के साथ ही लगाया गया अथवा पीछे से—इसका भी कोई प्रमाण नहीं। परन्तु जब स्वामी श्रद्धानन्द के १८८७ में पहुँचने तक भी वहाँ आर्यसमाज मन्दिर नहीं बना था तो उससे पाँच वर्ष पूर्व १८८२ में 'आर्यस्थान' कहाँ से आ गया? तत्पश्चात् ऋषि के जीवन-चरित की खोज में पं० लेखराम जी १८९३ में बम्बई पहुँचे थे। तब तक भी ये शिलालेख आर्यसमाज के भवन पर लगाए गए प्रतीत नहीं होते। यदि उस समय लगे हुए होते तो पं० लेखराम जी जैसे व्यक्ति की दृष्टि में आए बिना न रहते। उस अवस्था में वह चैत्र सुदी पंचमी स्थापना-तिथि निश्चयपूर्वक न लिखते। यदि लिखते भी तो कम-से-कम चैत्र सुदी की चर्चा किए बिना न रहते। वस्तुतः उपर्युक्त पहला शिलालेख स्वामीजी के ११ अप्रैल को श्रीगोपालराव हरि देशमुख को लिखे पत्र के विरुद्ध होने और दूसरा शिलालेख स्वामी श्रद्धानन्द जी के लेख के विरुद्ध होने तथा पं० लेखराम जी से अनुमोदित न होने के कारण काल्पनिक होने और पं०

लेखराम जी के बम्बई पहुँचने के बाद के होने से अप्रामाणिक हैं। इस सन्दर्भ में सबसे बड़ी बात तो यह है कि आर्यसमाज की स्थापना के ठीक दूसरे दिन स्वयं महर्षि के हस्ताक्षरों से युक्त पत्र की तुलना में कम-से-कम १८ वर्ष बाद एक कारीगर के हाथ से खुदे अक्षरों से युक्त पत्थर को कैसे प्रमाण माना जा सकता है?

चैत्र सुदी १ को आर्यसमाज की स्थापना-तिथि सिद्ध करने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा नियुक्त आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री का कथन है कि 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' आदि में १० अप्रैल को छपी सूचना का आर्यसमाज की स्थापना से कोई सम्बन्ध नहीं है। इनके अनुसार पं० लेखराम, देवेन्द्र बाबू आदि सबकी यह भूल थी कि उन्होंने समाचारपत्रों में छपी सूचना में आए 'Formation' शब्द का अर्थ 'Foundation' समझ लिया, जबकि उसका ठीक अर्थ 'साप्ताहिक अधिवेशन' होता है। 'Formation' अंग्रेज़ी का शब्द है और अंग्रेज़ी का सबसे अधिक प्रामाणिक कोश 'Oxford English Dictionary' है। उसमें 'Formation' शब्द के अर्थ दिए हैं— 'Putting or Coming into form, creation, production, formal structure, the manner in which a thing is formed, construction, etc.' ये सभी अर्थ 'Foundation' के पर्याय तो हो सकते हैं, परन्तु बहुत खोजने पर भी हमें Formation का अर्थ साप्ताहिक अधिवेशन अथवा उसका अंग्रेज़ी पर्याय weekly meeting, assembly or congregation आदि नहीं मिला। निश्चय ही Formation का अर्थ निर्माण अथवा स्थापना है। इस सूचना में Formation के लिए भक्तजनों, सत्संगियों, मुमुक्षुओं, श्रद्धालुओं आदि को आमंत्रित न करके well-wishers of the cause अर्थात् उद्देश्य से सहमत लोगों को ही आने की प्रेरणा की गई थी। वहाँ प्रयुक्त शब्दों से स्पष्ट है कि उस दिन का वह आयोजन आर्यसमाज की स्थापना के लिए किया गया था, प्रवचन सुनने-सुनाने के लिए नहीं। 'Formalities for the formation of Arya Samaj का अभिप्राय स्थापना के लिए अपेक्षित विधि-विधान, अधिकारियों की नियुक्ति आदि से है, हवन-यज्ञ, भजन, प्रवचन आदि से नहीं।

श्री सेवकलाल कृष्णदास द्वारा चैत्र सुदी १ सम्वत् १९३२ से फाल्गुन अमावस्या १९४४ तक की एक रिपोर्ट भी इस सन्दर्भ में प्रस्तुत की जाती है। उसमें लिखा है—

"संवत् १९३१ (गुजराती) ना चैत्र शुद १ शनिवार तारीख़ ७ मार्च शके १८७५ ने दीने सांजमा गिरगाम मां डॉक्टर माणेकजी ने बाड़ी माँ आर्यसमाज स्थापन करना सारू जे जाहेर सभा बोलाव्यामां आवी हती तेभा रजु कीघा अने ते सर्वानुमते बहाल रह्या अने तेज दहाड़े आर्यसमाज नी स्थापना थई।"

इस लेख में ४ अशुद्धियाँ हैं—

१. संवत् १९३१ चैत्र सुदी १ को शनिवार नहीं, बुधवार था।

२. शनिवार को चैत्र सुदी १ नहीं, पंचमी थी।

३. चैत्र सुदी १ को ७ मार्च नहीं, ७ अप्रैल थी। ७ मार्च को माघ की अमावस्या

(उत्तर भारत में फाल्गुन अमावस्या) थी और दिन रविवार था।

४. सन् को शक संवत् लिखा है। शक संवत् से शालिवाहन संवत् का व्यवहार होता था।

उपर्युक्त असंगतियों के कारण यह रिपोर्ट सर्वथा अविश्वसनीय ठहरती है। इसलिए इसके आधार पर ७ अप्रैल १८७५ को आर्यसमाज का स्थापित होना नहीं माना जा सकता। प्रकारान्तर से इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि आर्यसमाज-भवन पर लगा शिलालेख संवत् १९४४ तक अर्थात् आर्यसमाज की स्थापना के १३ वर्ष बाद तक भी नहीं लगा था। अन्यथा यह कैसे संभव है कि शिलालेख में 'चैत्र शुक्ला १, ७ अप्रैल बुधवार सन् १८७५' खुदा हो और आर्यसमाज की रिपोर्ट में 'चैत्र शुक्ला १, ७ मार्च शनिवार, शके १८७५' लिखा हो?

आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री सन् १९३३ व सन् १९६८ में प्रकाशित रिपोर्टों के आधार पर चैत्र शुक्ला १ की पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि इस प्रमाण को काटने का कोई भी आधार नहीं है। आश्चर्य है कि श्री वैद्यनाथ जी ५८ और ९३ वर्षों के बाद प्रकाशित रिपोर्टों को तो प्रमाण मानते हैं, किन्तु स्थापनावाले ही दिन समाचारपत्रों में प्रकाशित सूचना, स्थापना के दूसरे ही दिन स्वयं संस्थापक द्वारा लिखे गए पत्र तथा आर्यसमाज बम्बई की स्थापना के ११ मास बाद प्रकाशित रिपोर्ट को प्रमाण मानने के लिए तैयार नहीं हैं। हठधर्मिता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है?

इस सन्दर्भ में सन् १८७८ से १८८३ तक के साप्ताहिक सत्संगों की कार्यवाही के रजिस्टर का भी अकाट्य प्रमाण के रूप में उल्लेख किया जाता है। हम यहाँ उस रजिस्टर में से इस प्रकरण में अपेक्षित अंक दे रहे हैं—

"फाल्गुन कृष्ण पक्ष का, वार रवि १९३८ ता० १९वीं मार्च सने १८८२ अंग्रेज़ी ए रोज़ आर्यसमाज रा० रा० गोविन्द विष्णु जी शाला मां सांझ को ४ बजे मिला था। प्रथम वेदमन्त्रों से ईश्वरस्तुति और गबैया के द्वारा गायन करने के बाद वर्तमान पत्र में दी गई जाहेर ख़बर के अनुसार रविकृष्ण राम ईमाराम ने देशोन्नति विषय पर सरस भाषण दिया था। उसके पीछे दूसरे दिन अर्थात् चैत्र शुक्ला प्रतिपदा वार सोम सम्वत् १८३८ ता० २०मी मार्च सन् १८८२ के रोज आर्यसमाज जन्मदिवस होने से महोत्सव करने में आया था।"

इस लेख के सम्बन्ध में हमारा कहना है कि —

(क) यह कार्यवाही स्थापना के ७ वर्ष बाद सन् १८८२ की है। अतः उसे स्थापनावाले वर्ष १८७५ की कार्यवाही के विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

(ख) इस रजिस्टर में १८७८ से १८८१ तक के वर्षों में आर्यसमाज का जन्म-दिवस मनाए जाने का उल्लेख न होने से भी इस कार्यवाही की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है।

(ग) सन् १८८२ के रजिस्टर में बन्द पड़ी किसी के हाथ से लिखी कार्यवाही की

तुलना में १८७६ में मुद्रित रिपोर्ट, जो न जाने कितने हाथों में गई होगी, निश्चय ही अधिक प्रामाणिक है।

(घ) आचार्य वैद्यनाथ जी ने इस तथाकथित अकाट्य प्रमाण की संस्तुति करते हुए लिख दिया—"रजिस्टर में कार्यवाही की जो भाषा लिखी गई है, वह बहुत ही अच्छी और पूर्णतः उस समय की साक्षी है....प्रार्थना भजन करनेवाले के लिए 'गवैया' पद का प्रयोग है जो महर्षि के मथुरा में रहने और वहाँ की भाषा को ग्रहण कर प्रयोग में लाए जाने की साक्षी दे रहा है।" इस कार्यवाही के लेखक महर्षि दयानन्द नहीं हैं, समाज के कोई अधिकारी हैं। इसलिए कार्यवाही की भाषा भी उन्हीं की है। 'गवैया' पद स्वामीजी द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा का हो सकता है, परन्तु इस शब्द के कार्यवाही में लिखे जाने से इसके लेखक अनिवार्यतः स्वामी दयानन्द सिद्ध नहीं होते। स्वामीजी द्वारा प्रमाणित तिथि तो वही (चैत्र शुक्ला ५) है जो उन्होंने श्री गोपालराव हरि देशमुख को चैत्र शुक्ला ६ को लिखे पत्र में स्वयं लिखी थी।

रा० रा० गोविन्द विष्णु जी के घर पर सत्संग लगाए जाने से स्पष्ट है कि सन् १८८२ तक भी आर्यसमाज का अपना भवन नहीं बना था। जब भवन ही नहीं था तो उस पर शिलालेख लगाए जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यदि १८ फ़रवरी सन् १८८२ को समाज का अपना भवन बना हुआ होता तो १ मास बाद—२० मार्च को किसी व्यक्ति के घर पर सत्संग न लगाया जाता। इस प्रकार यदि इस रजिस्टर में अंकित कार्यवाही को प्रामाणिक माना जाय तो 'आर्यस्थान' (समाज का भवन) बनने की जो तारीख़ (१८ फ़ेब्रुअरी सन् १८८२) शिलालेख पर अंकित है, वह भी कल्पित सिद्ध होती है।

महर्षि दयानन्द के जीवनचरित की खोज करनेवाले तथा आर्यसमाज का इतिहास लिखनेवाले प्रायः सभी विद्वानों ने आर्यसमाज के १० अप्रैल को स्थापित होने का उल्लेख किया और सन् १९४० तक आर्यसमाज का स्थापना-दिवस सर्वत्र चैत्र शुक्ला पंचमी को ही मनाया जाता रहा। सार्वदेशिक सभा द्वारा मान्य 'आर्य पर्व पद्धति' में भी इसी का प्रकाशन होता रहा।

४ दिसम्बर १९३९ को श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने सार्वदेशिक सभा को लिखा —"आर्य पर्व पद्धति में आर्यसमाज का स्थापना दिवस चैत्र शुक्ला पंचमी है और बम्बई आर्यसमाज की जो शिला ऋषि के समय की है, उसमें स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा लिखी है। यह विषय अन्तरंग सभा में रखकर निश्चय किया जाए कि भविष्य में कौन-सी तिथि मानी जाए। यह विषय प्रान्तीय सभाओं को लिखकर उनसे सम्मति मँगाई जाए।"

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के उस पत्र पर सार्वदेशिक सभा ने अपनी २७ जनवरी १९४० की अन्तरंग सभा में विचार करके निम्नलिखित निश्चय किया—

"नोटिस का विषय सं० ४ आर्यसमाज स्थापना दिवस की ठीक-ठीक निर्धारण की तिथि का विषय पेश हुआ। प्रकट किया गया कि इस समय आर्यसमाज स्थापना दिवस

चैत्र शुक्ला ५ को मनाया जाता है। परन्तु बम्बई के आर्यसमाज के शिलालेख पर स्थापना तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा अंकित है तथा वह प्रमाणित है। इसलिए स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ रखनी चाहिए। यह भी प्रकट किया गया कि प्रो० ताराचन्द जी गाजरा इस सम्बन्ध में विशेष खोज और छानबीन कर रहे हैं।

निश्चय हुआ कि सम्प्रति यह विषय स्थागित किया जाए और पूरी-पूरी छानबीन होने के बाद यह विषय पुनः पेश किया जाए।"

तत्पश्चात्—यह विषय पुनः २८-१०-४० की अन्तरंग सभा में प्रस्तुत होकर निश्चय हुआ—

'जामए जमशेद नामक समाचारपत्र तथा आर्यसमाज बम्बई की पुरानी रिपोर्ट के आर्यसमाज स्थापना विषयक लेखों के फ़ोटो प्राप्त करके यह विषय आगामी अन्तरंग में प्रस्तुत किया जाये। इससे पूर्व २७-१-४० की अंतरंग ने निश्चय किया था कि यह विषय अगली बैठक में पेश किया जाए।"

उक्त निश्चय के अनुसार यह विषय १५-१२-४० की अन्तरंग सभा में प्रस्तुत होकर निम्न प्रकार निश्चय हुआ—

"आर्यसमाज स्थापना दिवस की तिथि के परिवर्तन का विषय पेश हुआ। आर्यसमाज बम्बई की नौवीं रिपोर्ट का फ़ोटो पेश होकर पढ़ा गया जिसमें समाज की स्थापना तिथि चैत्र सुदी प्रतिपदा अंकित की गई है। इसी सम्बन्ध में प्रकट किया गया कि जामए जमशेद नामक पत्र की कापी प्राप्त नहीं हो सकी है। विचार के बाद निश्चय हुआ कि यह पर्व चैत्र शुक्ला ५ के स्थान पर चैत्र सुदी प्रतिपदा को मनाया जाया करे।"

अन्तिम दोनों पत्र हमें सार्वदेशिक सभा से ३-६-७६ को इस विषय में लिखे गए अपने पत्र के उत्तर में प्राप्त हुए थे। इस प्रकार १९४१ से आर्यसमाज स्थापना दिवस चैत्र सुदी १ को मनाया जाने लगा।

सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रकाशित 'आर्यसमाज और उसका सन्देश' के पृष्ठ १६१ पर चैत्र सुदी १ की पुष्टि में 'सार्वदेशिक सभा का दिनांक २७ जनवरी १९४० का निर्णय' उल्लिखित है। पाठक ऊपर उद्धृत २७-१-४० के प्रस्ताव को देखेंगे तो तत्काल स्पष्ट हो जाएगा कि उसमें 'विषय को स्थगित करने और पूरी छानबीन के बाद पुनः पेश किए जाने' की बात कही गई है। 'स्थगित करने और छानबीन के बाद पुनः पेश किये जाने' का स्पष्ट अर्थ है कि प्रस्तुत अथवा विज्ञापित विषय पर उस समय कोई निर्णय नहीं हुआ था। ऐसी अवस्था में २७-१-४० के प्रस्ताव के आधार पर 'चैत्र सुदी ५ के स्थान पर चैत्र सुदी १ के स्वीकार किए जाने' की बात कहना सर्वथा अनुपयुक्त है।

२८-१०-४० को स्वीकृत प्रस्ताव में कहा गया है कि 'इससे पूर्व २७-१-४० की अन्तरंग ने निश्चय किया था कि यह विषय आगामी बैठक में पेश किया जाए।' पाठक एक बार फिर २७-१-४० के प्रस्ताव को पढ़कर देखें। वहाँ 'पूरी-पूरी छानबीन हो जाने के बाद पुनः पेश किया जाए' शब्द हैं, 'आगामी बैठक में पेश किए जाने' का कोई

उल्लेख नहीं है।

यद्यपि २७-१-४० की अन्तरंग सभा ने पूरी-पूरी छानबीन होने के बाद ही इस विषय पर पुनः विचार करने का निश्चय किया था, किंतु सभा के अधिकारियों ने न अपने निश्चयानुसार छानबीन की प्रतीक्षा की और न इस विषय के प्रवर्त्तक श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के सुझाव के अनुसार प्रान्तीय सभाओं से सम्मति माँगना आवश्यक समझा और निश्चय करके उसे तत्काल कार्यान्वित तथा प्रसारित कर दिया।

इस विषय को स्थगित करने और पूरी-पूरी छानबीन होने के बाद पुनः पेश करने विषयक २७-१-४० का कारण उसी प्रस्ताव में यह कहा गया था कि 'प्रो० ताराचन्द जी गाजरा इस विषय में विशेष खोज कर रहे हैं।' उनकी खोज की भी प्रतीक्षा न की गई और, जैसा कि गाजरा जी के सार्वदेशिक सभा को १०-१२-४५ को भेजे गये निम्न पत्र से प्रतीत होता है, सभा ने उन्हें अपने १५-१२-४० के निश्चय से अवगत किए जाने योग्य भी नहीं समझा। श्री गाजरा जी ने लिखा—

"इस समय आर्यसमाज के स्थापना-दिवस के सम्बन्ध में यह विचार चल रहा है कि स्थापना चैत्र सुदी एकम् को हुई थी अथवा चैत्र सुदी पंचमी को। मेरा यह निश्चित मत है कि स्थापना चैत्र सुदी पंचमी शनिवार बराबर १० अप्रैल १८७५ को हुई थी। यही तिथि धर्मवीर पं० लेखराम तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपनी पुस्तकों में जतलाई है। यह बराबर है कि समाज के पत्थर पर चैत्र सुदी एकम् लिखी हुई है। पर यह पत्थर समाज की स्थापना से कम-से-कम आठ वर्ष पीछे बना था। जब यह सवाल सार्वदेशिक सभा के सामने (२७-१-४०) को आया था तब मैंने बम्बई में जाकर 'जामए जमशेद' आदि पुराने गुजराती पत्रों के फाइल देखे थे और वहाँ से उद्धरण निकालकर सार्वदेशिक सभा के पास भेजे थे। इनमें स्पष्ट लिखा हुआ था कि पंचमी के दिन समाज की स्थापना गिरगाम में होगी। वे प्रमाण सभा के कार्यालय में मौजूद होंगे। यदि हों तो कृपा कर उनकी प्रतियाँ मुझे भिजवा दें। इस सम्बन्ध में मैं और अधिक जाँच कर रहा हूँ।"

—हस्ताक्षर *ताराचन्द गाजरा*

इस प्रसंग में दूसरा पत्र आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् एवं गवेषक मौलवी महेशप्रसाद जी (अरबी के प्रोफ़ेसर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी) का था। आपने लिखा था कि आर्यसमाज की स्थापना बम्बई में चैत्र सुदी ५ सम्वत् १९३२ (उत्तर भारत) को हुई थी। चैत्र शुक्ला १ को मानना ठीक नहीं।

तीसरे बड़े विद्वान् जिन्होंने चैत्र शुक्ला १ को स्थापना-दिवस के रूप में मनाने का विरोध किया, महामहोपाध्याय श्री युधिष्ठिर मीमांसक थे। मीमांसक जी ने अजमेर से सभा-मन्त्री को लिखा—

"आपका पत्र सं० १९७६ ता० १४-९-४५ का प्राप्त हुआ। आपने लिखा है कि चैत्र शुक्ला १ आर्यसमाज स्थापना-दिवस बम्बई में लगे शिलालेख के अनुसार है तथा तत्कालीन पत्रों में भी यही तिथि छपी थी। कृपा करके लिखें कि किस पत्र में किस

तारीख में यह उल्लेख है। क्योंकि यह एक ऐतिहासिक घटना है। इसमें किंचित् मात्र विपर्यय न होना चाहिए। तथा सब बातें रिकार्ड में रहनी चाहिएँ। मुझे एक पुस्तक में लिखने के लिए इसकी आवश्यकता है। स्वामीजी ने चैत्र शुक्ला ६ रविवार सं० १९३१ को बम्बई से गोपालराव हरि देशमुख को लिखा था—'आगे बम्बई में चैत्र सुदी ५ शनिवार के दिन सायंकाल के साढ़े पाँच बजे आर्यसमाज का आरम्भ हुआ।' आप इस पर सम्यक् विचार करके लिखें। उत्तर अवश्य देवें।" परन्तु सभा ने इस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया।

एतद्विषयक खोज में लगे तीन विशिष्ट विद्वानों के पत्रों, स्वयं स्वामीजी के पत्र, स्थापनावाले दिन समाचारपत्रों में छपी सूचना तथा बम्बई समाज की पहले ११ मास की मुद्रित रिपोर्ट की अवहेलना करके एक कारीगर के द्वारा स्थापना के लगभग २० वर्ष बाद लगाये गए पत्थर को परम प्रमाण मानना किसी भी समझदार व्यक्ति को ठीक नहीं जँचेगा।

इस प्रसंग में विचित्र बात यह है कि १९४० में चैत्र सुदी १ के पक्ष में निर्णय हो जाने पर भी श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित और सार्वदेशिक सभा द्वारा १९५७ में प्रकाशित 'आर्यसमाज का इतिहास' (प्रथम भाग) के पृष्ठ ९२ तथा ३१९ पर चैत्र सुदी पंचमी को ही आर्यसमाज की स्थापना-तिथि के रूप में स्वीकार किया गया है।

निष्कर्ष के तौर पर हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना चैत्र सुदी पंचमी सम्वत् १९३१ (गुजराती) शनिवार तदनुसार १० अप्रैल १८७५ को ही हुई थी। हमारी मान्यता का आधार है—

(१) बम्बई के प्रातःकालीन समाचारपत्रों में उस दिन सायंकाल तदर्थ होनेवाले आयोजन की सूचना।

(२) अगले दिन चैत्र सुदी ६ को लिखे गए, संस्थापक ऋषि दयानन्द के हस्ताक्षर-युक्त पत्र द्वारा गोपालराव हरि देशमुख को चैत्र सुदी ५ को आर्यसमाज की स्थापना की सूचना दिया जाना।

(३) बम्बई समाज की प्रथम ११ मास की उसी वर्ष मुद्रित रिपोर्ट में चैत्र सुदी ५ की साक्षी।

परिणामतः चैत्र शुक्ल की पुष्टि में प्रस्तुत सभी प्रमाण उक्त तथ्यों के विपरीत होने से सर्वथा कल्पित, अविश्वसनीय तथा अमान्य हैं।

हमें लगता है कि सार्वदेशिक सभा स्वयं भी सुदी १ के प्रति अश्वस्त नहीं है। यदि ऐसा न होता तो बार-बार कहने पर भी चैत्र सुदी ५ के समर्थकों से बात तक करने में संकोच न करती।

डॉ० सत्यकेतु विद्यांलकार ने सात भागों में आर्यसमाज का बृहद् इतिहास लिखा है। उसमें परिशिष्ट ३ के अन्तर्गत आर्यसमाज की स्थापना-तिथि का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। निष्कर्षतः उन्होंने लिखा है—

"गत वर्षों में स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने इस मत (चैत्र सुदी पंचमी) का प्रबल समर्थन किया है। इस परिशिष्ट में प्रस्तुत बहुत-सी साम्रगी उन्हीं से ली गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चैत्र सुदी पंचमी (१० अप्रैल १८७५) के दिन साढ़े पाँच बजे गिरगाँव (बम्बई) में स्थित डॉ० मानकजी की बाड़ी में एक सभा हुई थी, जिसकी अध्यक्षता श्री गिरधरदास दयालदास कोठारी ने की थी और जिसमें आर्यसमाज के नियम सुनाकर उपस्थित महानुभावों से उनकी स्वीकृति प्राप्त की गई थी। इस सभा की सूचना 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' आदि समाचारपत्रों में प्रकाशित कराई गई थी। श्री गोपाल हरि देशमुख के नाम चैत्र शुक्ला ६ को जो पत्र महर्षि दयानन्द ने लिखा था, उसमें भी इसी सभा से आर्यसमाज के आरम्भ का उल्लेख किया गया था। ....आर्यसमाज की स्थापना १० अप्रैल १८७५ के दिन हुई थी, इसके समर्थन में जो प्रमाण दिये गए हैं, वे बहुत प्रबल हैं। विशेषतया, महर्षि का गोपालराव हरि देशमुख को लिखा हुआ पत्र एक ऐसा प्रमाण है जिसे कदापि अन्यथा नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि महर्षि के जीवनचरित लिखनेवाले प्रायः सभी ने इसी मत का प्रतिपादन किया।

चैत्र सुदी १ और चैत्र सुदी ५ इन दो मतों मे सामंजस्य करते हुए डॉ० सत्यकेतु लिखते हैं—

"क्या यह संभव नहीं है कि चैत्र सुदी प्रतिपदा को महर्षि ने नियमों पर अपनी स्वीकृति दे दी हो और उसी दिन अनौपचारिक रूप से आर्यसमाज का गठन कर लिया गया हो और बम्बई के लोग उसी दिन आर्यसमाज को स्थापित हुआ मानते हों? परन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि नियमानुसार विधिवत् आर्यसमाज को उसी दिन स्थापित हुआ माना जाएगा जिस दिन घोषणापूर्वक सार्वजनिक रूप से उसकी विधि सम्पन्न होगी। सब-कुछ हो जाने पर भी विवाह हुआ तभी माना जाएगा जब अग्नि की साक्षी में संस्कारविधि के अनुसार पाणिग्रहण होगा।"